(IJDSSH) 2016, Vol. No. 1, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-5142; p-ISSN: 2455-7730**

FIRST URBANIZATION IN THE GANGETIC PLAIN

Dr. Pratibha Pathak

Associate Professor, Ancient History
Mahavidyalay Bhatwali Bazar (Unwal), Gorakhpur College, Gorakhpur

गंगा के मैदानी क्षेत्र में प्रथम शहरीकरण

डॉ प्रतिभा पाठक

एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास,
महाविद्यालय भटवली बाजार(उनवल)गोरखपुर।

बुद्ध युग भारतीय इतिहास में द्वितीय नगरीकरण का काल कहलाता है परन्तु गंगा के मैदानी इलाकों में यह प्रथम शहरीकरण था। प्रारम्भिक पालि साहित्य में चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी, वैशाली, मिथिला, आदि अनेकानेक नगरों के अस्तित्व के साक्ष्य मिलते हैं। इन महानगरों–नगरों में बड़ी समृद्धि, सुख एवं चहल–पहल व्याप्त थी। कुशावती नगरी के रूप में दीघा–निकाय में नगरों के ऐश्वर्य एवं वैभव की झाँकी प्रस्तुत की गई है। 'कुशावती नगरी समृद्ध थी, उन्नतशील थी, बहुत आबादी वाली, गुलजार थी, सुभिक्ष थी। ... कुशावती राजधानी दस शब्दों से रात–दिन सदा भरी रहती थी, जैसे हाथी के शब्द, अश्व–शब्द, रथ–शब्द, भेरि शब्द, मृद्ङंग शब्द वीणा–शब्द, झांझ शब्द, ताल–शब्द, शंख–शब्द,, ''खाओ'' ''पिओ'' के शब्द।[1] *लोहे के प्रचलन ने इन नगरों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। लौह–हथियारों से गंगा के जलोढ़ मैदानों के घने जंगलों की सफाई की गई एवं लोह निर्मित विभिन्न कृषि उपकरणों के द्वारा कृषक अब बहुत अधिक अन्य उत्पादन करने लगा। कृषक के अपने परिवार के भरण–पोषण के बाद बचे अनाज से नगर में रहने वाले शासकों, पुरोहितों, शिल्पियों, सिपाहियों एवं सन्यासियों की बड़ी जमात का पोषण होने लगा। फलतः नगर, महानगर, महाजनपद, बड़े–बड़े राजतंत्रों–गणतंत्रों का अस्तित्व कायम हो सका। ग्रामीण बस्तियों का भी विस्तार हुआ। पालि साहित्य में अनगिनत गाँवों का उल्लेख हुआ है। अनेक प्रकार के गाँव बसे। साहित्य में स्थायी गाँव, अस्थायी गाँव, सजातीय गाँव, एक ही पेशे से सम्बद्ध गाँव, द्वार ग्राम, निगम ग्राम आदि का उल्लेख मिलता है। सम्पन्न गाँवों के लिए साहित्य में ''जनाकीर्ण तृण–काष्ठ–उदक धान्यसम्पन्न'' जैसे विशेषणों का प्रयोग हुआ है। कृषि के विस्तार, अन्न के प्रभूत उत्पादन, विभिन्न व्यवसाय–शिल्पों की प्रगति से इनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ हुई। निगम की स्थिति गाँव एवं नगर के मध्य की थी जहाँ वाणिज्यिक गतिविधियाँ ग्राम की अपेक्षा तीव्रतर थी।*

(IJDSSH) 2016, Vol. No. 1, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-5142; p-ISSN: 2455-7730**

जीवकोपार्जन का सबसे प्रमुख साधन कृषि था। सभी जाति एवं वर्ग के लोग इसमें संलग्न थे। कृषि विकास पर ध्यान देना राजा का एक प्रमुख कर्त्तव्य था। एक जातक कथा में राजा एवं उसके आमात्यों द्वारा बुवाई के उत्सव में खेत जोतने का वर्णन का आया है।[2] लोहे के फाल, फरसा, कुदाल, निखादन आदि कृषि उपकरणों की आपूर्ति ने आर्थिक क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन किये। यद्यपि लोहे का ज्ञान भारतवासियों को बुद्ध–युग पूर्व ही हो गया था परन्तु ई0पू0 छठीं शती के आस–पास ही यह सामान्य प्रचलन की धातु बन पायी। गंगा के मैदानी इलाकों के घने जंगलों को लोहे के उपकरणों से साफ किया गया। बौद्ध साहित्य में जंगलों की सफाई के उपरान्त वहाँ कृषि कार्य प्रारम्भ करने के साक्ष्य मिलते है। इन जंगलों को केवल जलाने से नष्ट नहीं किया जा सकता था। लोहे की कुल्हाड़ी या कुदाल से पेड़ की ठूँठ एवं जड़ को समाप्त किया गया। इस युग का सबसे लोकप्रिय खाद्यान्न चावल था। चावल की विभिन्न किस्मों एवं व्यंजनों का उल्लेख साहित्य में सहज ही दृष्टव्य है। इसकी उत्तम फसल प्राप्त करने के लिए गहरी जुताई की आवश्यकता होती है जो लकड़ी के फाल द्वारा पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार की सख्त भूमि पर असम्भव थी। लोहे के फाल द्वारा ही यह सम्भव हो सका। सुत्त–निपात, संयुक्त–निपात एवं सूची जातक लोहे के फाल के प्रयोग के स्पष्ट साक्ष्य प्रस्तुत करते है।[3] धान की विभिन्न किस्मों[4] के अलावा, जौ,[5] गेहूँ, सावाँ,[6] टाँगुन,[7] चीना[8] (–चेना), कोदो[9] एवं दालों में मूँग,[10] उड़द,[11] कुलथी, [12] मसूर[13] का उत्पादन होता था। ईख भी बड़े पैमाने पर पैदा की जाती थी, जिसकी उत्तम पैदावार लोहे के फाल से गहरी जुताई करके प्राप्त की गई। विनयपिटक में गुड़ के घड़ों से भरी पाँच सौ गाड़ियों को व्यापार हेतु जाने का विवरण मिलता है।[14]

कृषि कार्य में पशु–धन की उपयोगिता स्पष्ट हो गयी थी। इसके अतिरिक्त बोझा–ढोने, परिवहन खाल, बाल, दूध–दही, मांस के लिए तथा युद्ध एवं शान्ति में विभिन्न पशुओं का विविध प्रकार से उपयोग किया जा रहा था। आर्थिक उन्नति के लिए इनका संरक्षण आवश्यक था। यही प्रमुख कारण था, जिसके लिए महात्मा बुद्ध ने यश आदि में इनकी निरर्थक हिंसा पर बड़ा क्षोभ व्यक्त किया है।[15] गाय को माता–पिता एवं भाई–बन्धु के समान मनुष्य का परम् मित्र एवं अन्न, बल तथा सुख का दाता कहा गया है।[16] देश में बड़े पैमाने पर गो–पालन किया जाता था। मेंडक गृहपति ने इस कार्य हेतु साढ़े बारह सौ गोपालकों को नियुक्त किया था। प्रारम्भिक पालि साहित्य में स्पष्ट है कि दूध, दही, मक्खन, घी, मण्ड का प्रचुरता से प्रयोग किया जाता था।

कृषि–कार्य में बैल का अत्यधिक महत्व था।[17] संयुक्त–निकाय में बैल को प्राणियों में सहायक कहा गया इसके साथ ही साथ ढुलाई का अधिकांश कार्य बैलों से ही लिया जाता था। पशु–पालकों को इस बात के लिए विशेष सचेत रहना पड़ता था कि उनके पशु कहीं खड़ी फसल को हानि न पहुँचा दें। पशुओं को लेकर वे प्रायः जंगलों में जाते

(IJDSSH) 2016, Vol. No. 1, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-5142; p-ISSN: 2455-7730**

थे क्योंकि कृषि भूमि के विस्तार के कारण गाँव में चारा प्राप्त करना कठिन होता जा रहा था। गाय एवं बैल के अतिरिक्त हाथी, घोड़े, भेड़, बकरी, गधे, कुत्ते एवं सुअर का भी पालन किया जाता था। हाथी एवं घोड़े राजकीय महत्व के पशु थे। राजकीय संरक्षण में हस्तशाला, हस्ति वैद्य एवं हस्ति शिक्षक विद्यमान रहते थे। हाथी युद्ध में बड़ा उपयोगी था इसके अतिरिक्त संभ्रान्त वर्ग द्वारा इसकी पीठ पर सवारी भी की जाती थी। हाथी–दाँत भी एक मूल्यवान वस्तु था। उत्तर–पश्चिम भारत में श्रेष्ठ नस्ल के घोड़े पाये जाते थे। यहाँ के घोड़े की पूरे देश में माँग थी। उत्तरापथ के घोड़े की बिक्री का एक प्रमुख बाजार बनारस में था। घोड़े मुख्यतः पीठ की सवारी, रथ की सवारी एवं रण–क्षेत्र में काम आते थे। बकरी, सुअर एवं भेड़ की उपयोगिता अपने मांस के कारण थी। बकरी का दूध भी पीया जाता था। इसके अतिरिक्त भेड़ के बाल से निर्मित ऊनी वस्त्रों का बड़ा चलन था।

द्वितीय नगरीकरण के इस युग में विभिन्न प्रकार के उद्योगों में अभूतपूर्व प्रगति आई एवं जीविका के अनेकानेक साधनों का विकास हुआ। कृषि क्षेत्र में तो लौह–धातु की भूमिका स्पष्ट की जा चुकी है। अन्य क्षेत्रों में भी यह अपनी उपयोगिता प्रमाणित कर रहा था। लौह पात्रों का प्रयोग जनसामान्य के साथ–साथ भिक्षु–भिक्षुणी का समुदाय भी करता था। इसके दो स्पष्ट कारण थे एक तो लौह वस्तुओं की जीवनावधि बहुत अधिक थी, दूसरे ये अपेक्षाकृत सस्ते भी थे। लोहे से विभन्न अस्त्र–शस्त्र बर्छी, कूट, वाण, शूल, तीर, कवच आदि, सिलाई के उपकरण–सूई कैंची आदि एवं स्थापित्य के क्षेत्र में–प्राकार, गृह, सिटकनी, कील आदि निर्मित किये जाते थे। सुवर्ण एवं रजत बहुमूल्य धातुएँ थी, अतः यह मुख्यतः धनाढ्य वर्गों द्वारा प्रयोग में लायी जाती थी। चाँदी की तुलना में सुवर्ण अधिक लोकप्रिय था। स्त्री–पुरुष ही नहीं राजा–महाराजाओं के यहाँ हाथी, गौ अश्व भी सुवर्णालंकारों से सुसज्जित रहते थे। मुद्रा के रूप में सुवर्ण का प्रयोग मँहगे सौदे के देन–लेन में होता था। अनाथपिण्डिक ने 'हरिण्य' से भरी कई गाड़ियों से जेत राजकुमार से जेतवन् क्रय किया था।

वस्त्र–उद्योग तत्कालीन समय का एक प्रमुख उद्योग था। काशी, खोम, कोटुम्बर, गन्धार इसके प्रसिद्ध केन्द्र थे। इनमें काशी के वस्त्र सबसे अधिक मूल्यवान एवं उत्तम कोटि के होते थे। यहाँ के सूती एवं रेश्मी वस्त्र विशेष रूप से विख्यात थे। ऐश्वर्यमय वस्तुओं यथा प्रासाद गाय, के साथ काशी के वस्त्रों की गणना की गई है। विनयपिटक में रंगाई के शिल्प पर विस्तार से प्रकाश पड़ता है। कुम्भकार मिट्टी के बर्तन, घड़े एवं खिलौनों का निर्माण करते थे जिनकी समाज में बड़ी माँग थी। आज की ही भाँति चाक पर मिट्टी की वस्तुएँ बना कर उन्हें आँव में पकाया जाता था। मृण्मय पात्रों एवं खिलौनों पर विविध प्रकार की चित्रकारी एवं रंगाई की जाती थी। बढ़ई काष्ठ से घर, रथ, नाव जैसे बड़ी एवं मूल्यवान वस्तुओं के साथ–साथ कृषि एवं वस्त्र–उद्योग के लिए विभिन्न उपकरण, खिलौने, पात्र, चारपाई, पीढ़ा, पादुका आदि का निर्माण करते

(IJDSSH) 2016, Vol. No. 1, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-5142; p-ISSN: 2455-7730**

थे। दंतकार हाथी दाँत से विभिन्न प्रकार के आभूषण बनाया करते थे। इसके अतिरिक्त रथ एवं पलंग आदि की सजावट में भी हाथी दाँत प्रयुक्त होता था। बुद्ध युगीन समाज में मांसाहार–प्रियता ने शिकारियों के व्यवसाय को पनपने का अच्छा अवसर दिया शिकारी जंगलों में पशु–पक्षियों का शिकार कर, उन्हें बेचकर अपनी आजीविका चलाते थे। पशु–पक्षियों की बहुलता होने पर शिकारी जंगलों के समीप, वहीं अपना ग्राम बसा लेते थे। इसी प्रकार मछुआरे नदी एवं जलाशय से मछली पकड़ उन्हें बेचकर अपना निर्वाह करते थे। जातक कथाओं से शिकारियों एवं मछुआरों की कार्यविधि पर विस्तार से प्रकाश पड़ता है। यद्यपि बौद्ध साहित्य में इस प्रकार से क्रूर–कर्म करने वालों की निन्दा की गई है। चिकित्सा–कार्य द्वारा जीविकोपार्जन करना एक सम्मानजनक पेशा था। कुशल चिकित्सक राजपरिवार की सेवा में नियुक्त होते थे। शल्य–क्रिया भी की जाती थी। चिकित्सा कार्य के बदले चिकित्सक बहुमूल्य उपहार एवं फीस के रूप में मुद्राराशि प्राप्त करता था। नाई, लोगों के हजामत एवं केश बनाने का कार्य करता था। राजा के व्यक्तिगत सेवकाई का कार्य भी नाई किया करते थे। संभ्रान्त वर्ग के घरों में भोजन–निर्माण हेतु रसोइये रक्खे जाते थे। प्रधान रसोइये के साथ उनके कार्य में सहायता देने के लिए सहायक व्यक्ति भी रहा करते थे। इस काल में दर्जी के पेशे में भी प्रगति दिखाई देती है। गाँव की अपेक्षा नगर के दर्जी वस्त्रों की सिलाई अधिक सुघड़ता से करते थे। पुष्पों का प्रयोग विविध रुपों में समाज में किया जाता था। मालाकार विभिन्न प्रकार के पुष्पाभूषण निर्मित करते थे। पूजा हेतु भी फूलों का प्रयोग किया जाता था। समाज का एक वर्ग राजकीय सेवाओं के माध्यम से जीविकोपार्जन करता था। विभिन्न राजकीय कर्मचारियों का उल्लेख प्रारम्भिक पालि साहित्य में मिलता है। राजा, उपराजा,[18] पुरोहित, सेनापति, कोषाध्यक्ष–श्रेष्ठी, न्यायाधीश, रज्जुग्राहक, विविध प्रकार के आमात्य उच्च पदस्थ अधिकारी थे। इसके अलावा द्वारपाल, सारथी, नगर–कोतवाल, सन्देशवाहक[19], भण्डागारिक एवं बड़ी मात्रा में विभिन्न प्रकार के सैनिक कर्म करने वाले जैसे हस्ति–सैनिक, अश्व–सैनिक, व्यूह रचना करने वाले सैनिक आदि भी नियुक्त किये जाते थे। दूसरों का बहुभाँति मनोरंजन कर जीवन यापन करने वालों का भी एक वर्ग था जिनमें गन्धर्व, मल्ल, नट–नटी,[20] संपेरा प्रमुख थें।

व्यापार एवं वाणिज्य की दृष्टि से बुद्ध कालीन भारत भारतीय इतिहास का एक अति महत्वपूर्ण चरण माना जाता है। बड़े व्यापारी अकूत धन–सम्पदा के स्वामी होते थे। शासन पर भी इनका प्रभाव होता था। बाजार दुकानें गाँव एवं शहरों में जगह–जगह विद्यमान थी जिनमें जनसामान्य की आवश्यकता की सभी वस्तुएँ सुलभ थी। कभी–कभी पूरे–पूरे गाँव एवं गली में एक ही वस्तु का विक्रय किया जाता था। वैहंगी एवं गाड़ियों पर भी माल लादकर, बेचा जाता था। कुछ छोटे व्यापारी दरवाजे–दरवाजे जाकर आवाज देते हुए अपना सौदा बेचते थे। बड़े व्यापारी गाड़ियों में माल लदवाकर सुदूर स्थानों पर आया–जाया करते थे। अन्तर्देशीय एवं विदेशी दोनों प्रकार के व्यापारों में, कुछ मार्गों

(IJDSSH) 2016, Vol. No. 1, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-5142; p-ISSN: 2455-7730**

की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका थी। सबसे विख्यात महापथ 'उत्तरापथ' था जो राजगृह से प्रारम्भ होकर वैशाली, नालंदा, पाटलिपुत्र, वाराणसी, प्रयाग, कान्यकुब्ज, संकाश्य, सोरों, वेरंजा, मथुरा, इन्द्रपस्थ, शाकल होते हुए तक्षशिला तक जाता था।[21] इस मार्ग पर व्यापारियों एवं विद्यार्थियों की विशेष चहल–पहल रहती थी। उत्तर से दक्षिण पूर्ण जाने वाला मार्ग (अर्थात् राजगृह से श्रावस्ती) एवं दक्षिणापथ मार्ग (अर्थात् श्रावस्ती से प्रतिष्ठान), तत्कालीन प्रमुख व्यापारिक मार्ग थे। देश के सभी व्यापारिक केन्द्र इन मार्गों से सम्बद्ध थे। स्थल–मार्ग के सुदूर व्यापार में बैलगाड़ी ही परिवहन का सबसे प्रचलित साधन थी। नदी एवं समुद्री मार्गों के द्वारा भी व्यापार होता था। नदी मार्गों में, गंगा एवं यमुना महत्वपूर्ण जलमार्ग प्रस्तुत करती थी। समुद्री मार्ग मुख्यतः विदेशी व्यापार के साधन थे। बेबिलोन, सुवर्णभूमि एवं ताम्रलिप्ति आदि देशों के साथ भारत के प्रगाढ़ व्यापारिक सम्बन्ध थे। समुद्री यात्रा में अति विशालकाय नौकायें प्रयुक्त होती थी जिनमें सैकड़ों व्यक्ति एक साथ यात्रा करते थे। भरूकच्छ, सुष्पारक, करम्बिय, गम्भीर, सेरिव भारतीय समुद्रतटों पर स्थित प्रमुख बन्दरगाह थे। थल एवं जलमार्गों की सुदूर यात्रायें निर्बाध नहीं थी। थल मार्ग में पानी का अभाव, भोजन की कमी, चोर–डाकुओं का आतंक, विषैले पेड़–पौधे, रेतीली तप्त भूमि आदि कठिनाइयाँ थी। ऐसे संकट की घड़ी में 'सार्थवाह' अपनी सूझ–बूझ से यात्रियों की प्राण–रक्षा करता था।[22] इसके अतिरिक्त वन पथों में सुरक्षा एवं सहायता हेतु वन–रक्षकों की भी सेवायें ली जाती थी। जल मार्ग के खतरे और भी गम्भीर थे। जहाजों में छेद होने एवं डूब जाने की घटनायें प्रायः घटित होती रहती थी। जल भँवर, भीमकाय समुद्री जीव भी समुद्री–यात्रियों के प्राणों को संकट पैदा कर देते थे। ऐसी विकट स्थितियों में ज्येष्ठ नाविक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए यात्रियों को संकट–मुक्त करने का प्रयास करते थे। प्रायः ऐसी परिस्थिति में प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में दैवी शक्तियों द्वारा व्यापारियों की प्राणरक्षा करने का उल्लेख मिलता है।

इस युग की प्रमुख व्यापारिक वस्तुओं में खाद्यान्न, रेशमी वस्त्र, सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र, सुगन्धित वस्तुएँ, जवाहरात एवं सुवर्ण आदि बहुमूल्य धातुओं से निर्मित वस्तुएँ, हाथी दाँत के सामान, साग–सब्जी, घोड़े, पक्षी, शराब, मृण्पात्र, मांस–मछली की गणना की जा सकती है। इन युग में मुद्रा एवं ऋण के चलन एवं श्रेणी संगठन ने व्यापारिक प्रगति में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। धनाढ्य श्रेष्ठी छोटे व्यापारियों को ऋण वितरित किया करते थे इसके अतिरिक्त अन्य व्यापारियों से भी व्यापारी ऋण लिया करते थे। कभी–कभी राजकीय सहायता रूप में भी व्यापारियों को व्यापार हेतु पूँजी प्राप्त हुआ करती थी। विकसित अर्थतंत्र में केवल वस्तु–विनिमय प्रणाली से काम नहीं चल सकता। मुद्रा का चलन इस युग की अपनी विशिष्टता है। सबसे प्रचलित सिक्का कार्षापण था[23] पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि ये रजत एवं ताम्र निर्मित हुआ करते थे। मूल्यवान् सौदों एवं दानादि में हिरण्य एवं निष्क नामक स्वर्णमुद्रायें प्रचलित थीं। अर्द्ध–कार्षापण, पाद, मासक, अर्द्ध–मासक एवं काकणिका का प्रयोग भी मुद्रा के रूप में

(IJDSSH) 2016, Vol. No. 1, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-5142; p-ISSN: 2455-7730**

होता था। संगठन एवं सहयोग, इस युग के आर्थिक क्षेत्र की विशिष्टता थी विभिन्न व्यवसायियों ने अपने–अपने संगठन बना लिये थे जो 'श्रेणी' नाम से जाना जाता था। जातक कथाओं में अट्ठारह प्रकार के शिल्पकारों की श्रेणियों का उल्लेख आया है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य व्यवसायियों के भी इसी प्रकार के संगठन कार्यरत थे। इन संगठनों के प्रधान को 'जेट्ठक' या 'प्रमुख' कहा जाता था। व्यापारिक श्रेणियों के प्रधान को 'श्रेष्ठी' कहा जाता था। इन श्रेष्ठियों की आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक स्थिति बड़ी सम्मानजनक थी। श्रेणी–मुख्यों को कुछ न्यायायिक एवं प्रशासनिक अधिकार भी प्राप्त थे।

खान–पान के सम्बन्ध में कोई विशेष नियम–निषेध नहीं दिखायी पड़ता। अन्नाहार[24] का प्रचुरता से प्रयोग किया जाता था। परन्तु समाज में मांसाहार का भी खूब प्रचलन था।[25] मद्यपान भी किया जाता था। यद्यपि मांसाहार एवं मादक पेय पदार्थ का प्रयोग समाज के सभी वर्गों द्वारा किया जाता था परन्तु इसके विरोध में भी स्वर साहित्य में कहीं–कहीं सुनाई पड़ता है। बुद्ध युग में आमोद–प्रमोद के विभिन्न साधन प्रचलित थे। गायन, वादन, नृत्य के संगीतमय कार्यक्रम का आनन्द समाज के सभी वर्ग के लोग लेते थे। अनेक प्रकार के उत्सवों का आयोजन होता था जिसे लोग बड़ी धूमधाम से मनाते थे। सुरामहोत्सव एवं अन्य उत्सवों में कभी–कभी स्त्री–पुरुष दोनों अनियंत्रित मद्यपान का आनन्द लेते थे। द्यूतक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, उद्यान क्रीड़ा, सर्प–नृत्य, नटों के करतब, मल्लयुद्ध मनोरंजन के अन्य प्रमुख प्रचलित साधन थे।

बुद्ध का युग सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन का युग था। इसमें ग्रामीण समाज के साथ–साथ नगर एवं नागरिक जीवन का विकास सामने आता है। ग्राम जीवन में भी पशु–पालन से अधिक महत्व अब कृषि व्यवसाय का दीखता है। जनसंख्या की वृद्धि परिलक्षित होती है। नगर जीवन उद्योग और व्यापार का विकास सूचित करता है। इस विकास के साथ मुद्राओं का प्रचलन भी प्रारम्भ हुआ और श्रेणियों की व्यवस्था[26] और विकास देखने में आते है। गणराज्य क्रमशः महाजनपदों को स्थान देते है और इस युग के शासक व्यवसायिक सेना विशेषज्ञ, प्रशासनिक सहायकों से अपने प्रभुत्व को दृढ़ करते है। पुरानी ग्रामीण और गणव्यवस्था के बदलने से धर्म की नयी व्याख्या सामने आती है। पुराने देवताओं का यज्ञ प्रधान पूजन अब पर्याप्त नहीं प्रतीत होता। प्रकृति एवं समाज के संचालक तत्व के रूप में धर्म को एक औपौरुषेय नियामक शक्ति के रुप में देखना आरम्भ होता है। मानव जीवन कर्म से संचालित होता है उसका बन्धन देवताओं को प्रसन्न करके नहीं काटा जा सकता इसके लिए तत्वज्ञान आवश्यक है। संसार स्वयं दुःख रुप है, हेय है, उसे छोड़ कर सन्यास आश्रयनीय है।

इस प्रकार धर्म की व्याख्या के अब दो परस्पर विरूद्ध प्रकार उभरते है एक और पुरानी वैदिक ब्राम्हण परम्परा जो धर्म को विधि विधान कर्मकाण्ड और वर्णाश्रम के द्वारा परिभाषित करती थी, दूसरी ओर श्रमण परम्परा जो कि निवृत्ति मार्गी एवं ज्ञान मार्गी थी।

(IJDSSH) 2016, Vol. No. 1, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-5142; p-ISSN: 2455-7730**

यह ब्राम्हण श्रमण परम्पराओं का संघर्ष उसी युग का है जिस युग में नगर जीवन का उदय हो रहा था और गणराज्यों का ह्रास।

सन्दर्भ सूची :–

1. *दीघ–निकाय, 2/3*
2. *जातक, निदान कथा, शैशव का एक चमत्कार*
3. *संत्त–निपात 1/4*
4. *सीहचम्म जातक, जातक संख्या 189; अनुसासिक जातक संख्या 115*
5. *सीहचम्म जातक, संख्या 189*
6. *सुत्त–निपात 2/2 पृष्ठ 69*
7. *सुत्त–निपात 2/2 पृष्ठ 69*
8. *सुत्त–निपात 2/2 पृष्ठ 69*
9. *मज्झिम निकाय, हि0अ0 पृ0 50 दद्दुल*
10. *दीघ–निकाय, कुटदन्त सुत्त, हि0अनु0 पृष्ठ 53; 1/5*
11. *यथा माता–पिता भ्राता, अंजे वापि च आतका*
    वावो तो परमा मित्ता, यासु जायन्ति ओमधा
    अन्नदा बलदा चेता वण्णढा सुखदा तथा
    एतमत्थवसं अत्वा, तारसु गावो हनिंसु ते
12. *जातक, संख्या 182; उपाहत जातक, संख्या 231*
13. *विनयपिटक, चुल्लवग्ग, 5/1/10 हिन्दी अनुवाद 423*
14. *जातक संख्या 456*
15. *कुस जातक, संख्या 531*
16. *दीघ निकाय, महावग्ग, महासुदर रात सुत्त, 2/17/6,*
    चतुरासीति पतलङ्कसहस्सानि अहेतु सोवण्णमयानि
    रूपिमर्यानि दन्तमर्यानि सास्मयानि गोनकत्थतानि
17. *जातक संख्या, 541, निमि जातक*
18. *कुरुधम्म जातक, जातक संख्या 276, जातक संख्या 539*
19. *दस ब्राह्मण जातक*
20. *पदकुशल माणव जातक*
21. *दीघ निकाय के पायासिराञ्ञ सुत्त, अपण्णक जातक*
22. *अपण्णक जातक, संख्या 1*
23. *भरत सिंह उपाध्याय, बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल पृष्ठ 548*
24. *दीघ निकाय, अञ्ञज सुत्त 3/अ*
25. *1–दीघ–निकाय 3/3*
26. *सुधा भोजन जातक, जातक संख्या 535*

(IJDSSH) 2016, Vol. No. 1, Jan-Jun **e-ISSN: 2455-5142; p-ISSN: 2455-7730**

REFERENCES

1. Deegh Nikay 2/3
2. Jatak, Nidan Katham Shaishav ka ek Chamatkar
3. Sant-Nipaat ¼
4. Sihchamm Jatak, Jatak No. 189, Anusasik Jatak No. 115
5. Sihchamm Jatak, No. 189
6. Sutt-Nipat 2/2 pg 69
7. Sutt-Nipat 2/2 pg 69
8. Sutt-Nipat 2/2 pg 69
9. Majjhim Nikay, H.A. pg 50 Daddul
10. Deegh Nikay, Kutdant Sutt, H. Anu. Pg 53 1/5